दव्वसंगहो

(द्रव्यसंग्रह)

पुण्यार्जक

आचार्य आदिसागर अंकलीकर अन्तर्राष्ट्रीय जागृति मंच, मुम्बई

प्रेरणा एवं आशीर्वाद

प्राकृताचार्य श्री 108 सुनीलसागर जी महाराज

प्राकृत दिवस मनाएँ

छक्खंडागम गंथं, जेट्ठं सुक्क पंचमीइ संपण्णं।
सो सुदपंचमी दिवसो, पागदभासा दिणोव्व मण्णेज्ज॥

(आचार्य श्री सुनीलसागर जी कृत)

अर्थात् षट्खण्डागम ग्रंथ ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को सम्पन्न हुआ। अत: वह श्रुत पंचमी दिवस प्राकृत भाषा दिवस के रूप में मनाना चाहिए।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव विरचित

दव्वसंगहो

पुण्यार्जक

आचार्य आदिसागर अंकलीकर अन्तर्राष्ट्रीय जागृति मंच
मुम्बई

प्रकाशक

प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन (रजि.)
सागर, मध्यप्रदेश

प्राकृतश्री- 12

कृति	:	**दव्वसंगहो**
सम्पादन	:	डॉ. शैलेश कुमार जैन बांसवाड़ा
पाठ्यक्रम निर्माण समिति	:	1. प्रो. ऋषभचन्द जैन फौजदार 2. डॉ. आशीष जैन आचार्य शाहगढ़ 3. डॉ. आशीष कुमार जैन बम्हौरी 4. पं. अरुण जैन जबलपुर
साज-सज्जा	:	अभिषेक कुमार जैन शास्त्री, सागर
संस्करण	:	प्रथम, वी.नि.सं. 2551, वि.सं. 2081, सन् 2025
आवृत्ति	:	1000
ISBN	:	**978-81-986457-7-7**
प्राप्ति स्थल	:	डॉ. आशीष जैन आचार्य शाहगढ़-सागर 154, गीतांजलि ग्रीनसिटी, संजय ड्राइव रोड सागर-470002 (म.प्र.) **9329092390** डॉ. आशीष कुमार जैन, बम्हौरी सहायक प्राध्यापक, एकलव्य विश्वविद्यालय दमोह (म.प्र.) **9685846161** WEBSITE- www.prakritbhasha.com EMAIL- prakritfoundation25@gmail.com
प्रकाशक	:	**प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन (रजि.)** सागर (म.प्र.)

प्राकृत-सवंर्धन की दिशा में....

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥

प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन की स्थापना का मूल उद्देश्य प्राचीनतम भाषा प्राकृत का संरक्षण व संवर्धन है। इस हेतु आबाल-वृद्ध में जागृति लाने के लिए फाउण्डेशन द्वारा अनेक प्रकार की कार्य योजनाएँ प्रारम्भ की जा रही हैं। इन कार्ययोजनाओं में **प्राकृत शिक्षण शिविर** भी एक उपक्रम है। देश में लगने वाले अनेक धार्मिक शिक्षण शिविरों की तरह होते हुए भी प्राकृत शिक्षण शिविरों की अपनी मौलिकता और उपयोगिता है क्योंकि इन शिविरों के माध्यम से जन सामान्य में प्राकृत भाषा की प्राचीनता, उसकी प्रामाणिकता, उसके समृद्ध साहित्य में संरक्षित आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, नैतिक, चारित्रिक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक सूत्रों को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया जायेगा।

भारत सरकार की ओर से प्राकृत भाषा को शास्त्रीय भाषा का दर्जा मिलना हमारे लिए गौरव का विषय है। जब देश में हिन्दी दिवस, संस्कृत दिवस आदि मनाए जाते हों, तब प्राचीनतम जनभाषा प्राकृत के नाम पर **प्राकृत दिवस** मनाना, राष्ट्र व विश्व पटल पर इस भाषा को पुर्नस्थापित करने का दायित्व हम सबका बन जाता है।

द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ संक्षिप्त एवं सरल रूप में द्रव्य-व्यवस्था का प्रतिपादन करने के कारण प्राकृत भाषा का अतिलोकप्रिय ग्रन्थ है। 58 गाथाओं में निबद्ध यह ग्रन्थ पाठक को सृष्टि की व्यवस्था का ज्ञान कराने में समर्थ है। इसलिए समाज में सर्वत्र इसका स्वाध्याय देखा जा रहा है।

सम्प्रति प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन द्वारा आयोजित हो रहे प्राकृत विद्या शिक्षण शिविरों में पढाये जाने वाले विषयों में इसे रखा गया है। उसी दृष्टिकोण से इसे तैयार किया गया है। आगे इसको और भी व्यस्थित व परिष्कृत करके फाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित किया जायेगा। फाउण्डेशन के शिविरों में पूज्य

साधुओं, आर्यिकाओं के आशीर्वाद एवं वरिष्ठ विद्वानों के मार्गदर्शन में हमारे विद्वान् साथी एवं विदुषी बहनें इसके अध्यापन के साथ ही प्राकृत भाषा के जन जागरण का पुनीत कार्य भी करेंगे।

प्राकृत भाषा के संरक्षण व संवर्धन हेतु विशेष रूप से कार्य कर रहे दिगम्बर जैन संत **प्राकृताचार्य श्री सुनीलसागर जी महाराज** की दूरदर्शिता पूर्ण सत्प्रेरणा और शुभाशीष से फाउण्डेशन की स्थापना की गई है। प्राकृत भाषा में लगभग पचास हजार गाथाओं के रचयिता अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी **आचार्य श्री वसुनन्दी जी महाराज**, प्राकृत विद्या पाठ्यक्रम के माध्यम से प्राकृत के उत्थान में निरत **मुनिवर श्री प्रणम्यसागर जी महाराज** एवं प्राकृत प्रशिक्षण शिविरों से प्राकृत अध्येता तैयार कर रहे **मुनिवर श्री आदित्यसागर जी महाराज** की प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रेरणा हमारा मार्गदर्शन व उत्साहवर्धन कर रही है। फाउण्डेशन को प्राप्त **आ.श्री वर्धमानसागर जी, आ.श्री समयसागर जी, आ.श्री विशुद्धसागर जी** सहित साधुओं व आर्यिकाओं का मंगल आशीर्वाद प्राकृत भाषा के सातिशय प्रचार-प्रसार का प्रशस्त हेतु बनेगा।

इस महत्वपूर्ण प्रकाशन में सहयोगी **आचार्य आदिसागर अंकलीकर अन्तर्राष्ट्रीय जागृति मंच, मुम्बई** का प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन (रजि.) सधन्यवाद आभार व्यक्त करते हुए मंगल भावना भाता है-

जयदु पागदभासा, बंभी लिपी सव्वदा जयदु।
जयदु अहिंसा धम्मो, भारदवस्सो सदा जयदु ॥

(आ.श्री सुनीलसागर-विरचित गाथा)

प्रकाशन मंत्री
डॉ. शैलेश कुमार जैन
प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन (रजि.)

प्रथम - छह द्रव्य-पंचास्तिकाय अधिकार

मंगलाचरण

जीवमजीवं दव्वं, जिणवरवसहेण जेण णिद्दिठं।
देविंदविंदवंदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥1॥

अन्वयार्थ—

जेण	=	जिन
जिणवर	=	जिनवर
वसहेण	=	वृषभ ने
जीवमजीवं	=	जीव और अजीव
दव्वं	=	द्रव्य को
णिद्दिठ	=	कहा है
देविंद	=	इन्द्रों के
विंद	=	समूह से
वंदं	=	वन्दनीय हैं
तं	=	उनको
सव्वदा	=	सदा
सिरसा	=	मस्तक झुकाकर
वंदे	=	नमस्कार करता हूँ।

अर्थ—जिन जिनवर वृषभ देव ने जीव और अजीव द्रव्यों का कथन किया है, जो इन्द्रों के समूह द्वारा वंदनीय हैं, उनको मैं सदा मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

विशेष- 100 इन्द्र- भवनवासियों के 40, व्यन्तरों के 32, कल्पवासियों के 24, चन्द्र, सूर्य, चक्रवर्ती और सिंह।

जीव के विशेष गुण

जीवो उवओगमओ, अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥2॥

अन्वयार्थ—

सो	=	वह जीव
जीवो	=	जीने वाला है
उवओगमओ	=	उपयोग वाला है
अमुत्ति	=	अमूर्तिक है
कत्ता	=	कर्ता है
सदेहपरिमाणो	=	अपने शरीर के बराबर है
भोत्ता	=	भोक्ता है
संसारत्थो	=	संसार में स्थित है
सिद्धो	=	सिद्ध है
विस्ससा उड्ढगई	=	स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है।

अर्थ—जीव जीने वाला है, उपयोगमयी है, अमूर्तिक है, कर्ता है, स्वदेह परिमाण है, भोक्ता है, संसारी है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है। इस प्रकार ये नौ गुण जीव के होते हैं।

गाथा में जीव की विशेषताओं का वर्णन किया गया है। उपर्युक्त नौ गुण सभी जीवों में पाये जाते हैं। चार्वाक दर्शन के प्रति जीवो नैयायिक दर्शन के प्रति उवओगो भट्ट तथा चार्वाक दर्शन के प्रति अमुत्ति सांख्य दर्शन के प्रति कत्ता नैयायिक, मीमांसक के प्रति सदेहपरिमाणो बौद्ध दर्शन के भोत्ता सदाशिव मत के प्रति संसारत्थो भट्ट और चार्वाक दर्शन के प्रति सिद्धो का प्रयोग किया गया है।

सभी मतों की एकान्त मान्यता को समझकर हमें अनेकान्त मान्यता को स्वीकार कर आत्मकल्याण करना चाहिए।

नयों की विवक्षा से जीव का लक्षण

तिक्काले चदुपाणा, इंदियबलमाउ आणपाणो य।
ववहारा सो जीवो, णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स ॥3॥

अन्वयार्थ–

ववहारा	=	व्यवहार नय से
जस्स	=	जिसके
तिक्काले	=	तीन काल में
चदुपाणा	=	चार प्राण
इंदियबलमाउ	=	इन्द्रिय, बल, आयु
य	=	और
आणपाणो	=	श्वासोच्छ्वास
दु	=	तथा
णिच्छय णयदो	=	निश्चय नय से
जस्स	=	जिसके
चेदणा	=	चेतना प्राण होता है
सो जीवो	=	वह जीव है।

अर्थ– जिसके तीनों कालों में इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास ये चार प्राण होते हैं, वह व्यवहार नय से जीव है। तथा जिसके चेतना होती है, वह निश्चयनय से जीव है।

व्यवहार नय – वस्तु के अशुद्ध स्वरूप को ग्रहण करने वाले नय को व्यवहार नय कहते हैं। जैसे- मिट्टी के घड़े को घी का घड़ा कहना। निश्चय नय – वस्तु के शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करने वाले नय को निश्चय नय कहते हैं। जैसे- मिट्टी के घड़े को मिट्टी का घड़ा कहना। गाथा में जीवत्व गुण का विवेचन किया गया है।

दर्शनोपयोग के भेद

उवओगो दुवियप्पो, दंसणणाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खू ओही, दंसणमध केवलं णेयं ॥4॥

अन्वयार्थ—

उवओगो	=	उपयोग
दुवियप्पो	=	दो प्रकार का है
दंसण णाणं च	=	दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग
दंसणं	=	दर्शनोपयोग
चदुधा	=	चार प्रकार का
चक्खु	=	चक्षुदर्शन
अचक्खू	=	अचक्षुदर्शन
ओही	=	अवधिदर्शन
अध	=	और
केवलं दंसणं	=	केवलदर्शन
णेयं	=	जानना चाहिए।

अर्थ— उपयोग दो प्रकार का होता है। दर्शनोपयोग एवं ज्ञानोपयोग। उपयोग–जीव में स्वपर को जानने–देखने योग्य जो शक्ति विशेष है उसको उपयोग कहते हैं। 1. **दर्शनोपयोग**– ज्ञान से पहले सत्तावलोकन मात्र को (कुछ है) इतने जानने को दर्शन कहते हैं। 2. **ज्ञानोपयोग**– दर्शन के पश्चात् विशेष जानने को ज्ञानोपयोग कहते हैं। दर्शनोपयोग चार प्रकार का जानना।। **1. चक्षु दर्शनोपयोग**– आँखों से ज्ञान होने के पूर्व सामान्य अवलोकन को चक्षुदर्शनोपयोग कहते हैं। **2. अचक्षुदर्शनोपयोग**– आँखों के सिवाय अन्य इन्द्रियों व मन से होने वाले ज्ञान के पूर्व जो सामान्य अवलोकन होता है, उसे अचक्षुदर्शनोपयोग कहते हैं। **3 अवधिदर्शनोपयोग**– अवधिज्ञान से पहले जो रूपी पदार्थों का सामान्य प्रतिभास होता है, उसे अवधिदर्शनोपयोग कहते हैं। **4. केवलदर्शनोपयोग**– केवलज्ञान के साथ होने वाले वस्तु के सामान्य अवलोकन को केवलदर्शनोपयोग कहते हैं।

ज्ञानोपयोग के भेद

णाणं अट्ठवियप्पं, मदिसुद ओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जय केवलमवि, पच्चक्ख परोक्ख भेयं च ॥5॥

अन्वयार्थ–

णाणं	=	ज्ञान
अट्ठवियप्पं	=	आठ प्रकार का है
मदिसुदओही	=	मति, श्रुत, अवधि,
अणाण	=	अज्ञानरूप
णाणाणि	=	ज्ञानरूप
मणपज्जय	=	मन:पर्ययज्ञान
अवि	=	व
केवलं	=	केवलज्ञान तथा
पच्चक्ख	=	प्रत्यक्ष
परोक्ख	=	परोक्ष
भेयं	=	भेद से दो प्रकार का भी है।

अर्थ– ज्ञानोपयोग के आठ भेद हैं। मति, श्रुत और अवधि ज्ञान अज्ञान रूप भी होते हैं। प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से ज्ञान दो प्रकार का भी है।

1. **मतिज्ञान**– इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला ज्ञान।

2. **श्रुतज्ञान**– मतिज्ञान से होने वाले ज्ञान को विशेषता से जानने वाला ज्ञान है।

3. **अवधिज्ञान**– इन्द्रिय और मन के बिना द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव की सीमा पूर्वक जो रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानने वाला ज्ञान।

4. **मन:पर्ययज्ञान**– द्रव्य–क्षेत्र – काल–भाव की सीमा पूर्वक जो दूसरे एवं अपने मन में स्थित रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानने वाला ज्ञान।

5. **केवलज्ञान**– सभी द्रव्यों की अनन्त पर्यायों को एक साथ जानने वाला ज्ञान।

उपयोग की अपेक्षा जीव का लक्षण

अट्ठचदुणाण दंसण, सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥6॥

अन्वयार्थ–

ववहारा	=	व्यवहार नय से
अट्ठ णाण	=	आठ प्रकार का ज्ञान
चदु दंसण	=	चार प्रकार का दर्शन
सामण्णं	=	सामान्य से
जीवलक्खणं	=	जीव का लक्षण
भणियं	=	कहा गया है
पुण	=	और
सुद्धणया	=	शुद्ध निश्चय नय से
सुद्धं	=	शुद्ध
दंसणं णाणं	=	दर्शन व शुद्धज्ञान जीव का लक्षण है।

अर्थ– गाथा में व्यवहार और निश्चय की अपेक्षा जीव का लक्षण बताया गया है। व्यवहार नय से आठ प्रकार का ज्ञान व चार प्रकार का दर्शन जीव का लक्षण होता है लेकिन शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध ज्ञान व शुद्ध दर्शन जीव का लक्षण है।

शुद्ध निश्चयनय– जो अभिप्राय अखण्ड निरपेक्ष त्रैकालिक शुद्ध स्वभाव को जाने उसे शुद्ध निश्चयनय कहते हैं।

नय एक दृष्टिकोण है, द्रव्य नहीं। नय एक पद्धति है, पदार्थ नहीं। जानने वाले की अपेक्षा लिए दृष्टिकोण ही नय है, जो वस्तु के किसी एक पक्ष को प्रमुखता से देखता है।

जीव का मूर्तिक और अमूर्तिक पना

वण्ण रस पंच गंधा, दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो ॥7॥

अन्वयार्थ—

णिच्छया	=	निश्चय नय से
जीवे	=	जीव में
पंच वण्ण	=	पाँच वर्ण
रस	=	पाँच रस
दो गंधा	=	दो गंध
अट्ठ फासा	=	आठ स्पर्श
णो	=	नहीं
संति	=	हैं
तदो	=	इसलिए
अमुत्ति	=	जीव अमूर्तिक है
ववहारा	=	व्यवहार नय से
बंधादो	=	कर्म बन्ध होने के कारण
मुत्ति	=	जीव मूर्तिक है।

अर्थ— निश्चय नय से जीव में पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध और आठ स्पर्श नहीं होते हैं इसलिए जीव अमूर्तिक है लेकिन कर्मों से बंधा होने के कारण जीव मूर्तिक है।

लोगों की आँखों के सामने व्यक्ति का मरण हो जाता है लेकिन आत्मा निकलते हुए दिखाई नहीं देता है। वैज्ञानिक भी आत्मा का रूप नहीं जान पा रहे हैं। यह भी इसके अमूर्तिक होने का प्रत्यक्ष प्रमाण माना जा सकता है। लेकिन हमारी पीड़ा, हमारा दुःख, शरीर के सम्पूर्ण भाग में, दुःख आत्मा के प्रदेशों की संरचना प्रकट करता है। ये दुःख/बंधन कर्मों के कारण है। इसलिए जीव मूर्तिक है।

जीव के कर्तापन कैसे?

पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा, सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥8॥

अन्वयार्थ–

आदा	=	आत्मा
ववहारदो	=	व्यवहार नय से
पुग्गल	=	पुद्‌गल
कम्मादीणं	=	कर्मादि का
कत्ता	=	कर्ता है
णिच्छयदो	=	अशुद्ध निश्चयनय से
चेदण	=	चेतन
कम्माण	=	कर्मों का
सुद्धणया	=	शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा
सुद्ध	=	शुद्ध
भावाणं	=	भावों का कर्ता है।

अर्थ– आत्मा व्यवहार नय से पुद्‌गल कर्मों का कर्ता होता है। अशुद्ध नय से चेतन कर्मों का कर्ता होता है और शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध भावों का कर्ता होता है।

सामान्यतः हम आपस में सुनते रहते हैं कि जीव कर्ता नहीं होता है। लेकिन इस गाथा से स्पष्ट होता है कि जीव कर्ता तो है, चाहे वह पुद्‌गल कर्मों का हो, चाहे चेतन कर्म राग-द्वेषादि का या फिर शुद्ध भावों का।

जीव भोक्ता कैसे?

ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स ॥9॥

अन्वयार्थ–

आदा	=	आत्मा
ववहारा	=	व्यवहारनय से
सुहदुक्खं	=	सुख – दुःख रूप
पुग्गल	=	पुद्गल
कम्मप्फलं	=	कर्म के फल को
पभुंजेदि	=	भोगता है
खु	=	और
णिच्छयणयदो	=	निश्चयनय से
आदस्स	=	आत्मा के
चेदणभावं	=	चेतन भाव को भोगता है।

अर्थ– जीव व्यवहार नय से पुद्गल कर्मों के फल सुख–दुख को भोगता है और निश्चय नय से आत्मा के चेतन भावों को भोगता है।

गाथा कर्म सिद्धान्त की प्रतिपादक है। 'जैसी करनी वैसी भरनी' 'जो बोयेगा–वही पायेगा' 'अपनी–अपनी करनी का फल सबको मिलता है' जैसे अनेक सुभाषितों के अर्थ को अपने में समेटे हुए है। संकट और दुःख के समय हमें निश्चय परक चिंतन आत्मशान्ति देता है। चेतन भावों से तात्पर्य है– मेरी आत्मा के भाव। साधु पुद्गल कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त दुःख के समय इसी विचार से समता धारण कर पाते हैं कि ये मेरी आत्मा के नहीं हैं। और अज्ञानी जीव की स्थिति इससे विपरीत होती है।

आत्मा का परिमाण

अणुगुरु देहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा, णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ॥10॥

अन्वयार्थ—

चेदा	=	आत्मा
ववहारा	=	व्यवहार नय से
असमुहदो	=	समुद्घात के सिवाय अन्य समयों में
उवसंहारप्पसपदो	=	संकोच विस्तार गुण के कारण
अणुगुरु	=	छोटे बड़े
देह	=	अपने शरीर के
पमाणो	=	प्रमाण है
वा	=	और
णिच्छय णयदो	=	निश्चय नय से
असंख	=	असंख्यात
देसो	=	प्रदेशों का धारक है।

अर्थ— यह जीव समुद्घात को छोडकर व्यवहार नय से संकोच व विस्तार गुण के कारण अपने छोटे-बड़े शरीर के बराबर होता है लेकिन निश्चयनय से असंख्यात प्रदेशी लोक प्रमाण है।

उदाहरण- जिस प्रकार दीपक का प्रकाश छोटे बड़े कमरे के कारण संकोच विस्तार को प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार आत्म प्रदेश छोटे बड़े शरीर में फैल जाते हैं। किन्तु समुद्घात के समय आत्म प्रदेश मूल शरीर से भी बाहर फैल जाते हैं।

1. वेदना- आत्यन्तिक 2. कषाय 3. विक्रिया
4. मारणान्तिक 5. तैजस 6. आहारक
7. केवली, ये सात प्रकार के समुद्घात होते हैं।

संसारी जीव के भेद

पुढविजलतेउवाऊ, वणप्फदी विविह थावरेइंदी।
विगतिगचदुपंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी ॥11॥

अन्वयार्थ–

पुढवि	=	पृथ्वी
जल	=	जल
तेउ	=	अग्नि
वाऊ	=	वायु
वणप्फदी	=	वनस्पति कायिक
विविह	=	अनेक प्रकार के
थावरे इंदी	=	एकेन्द्रिय स्थावर
होंति	=	होते हैं
संखादी	=	शंख आदि
विग	=	द्वीन्द्रिय
तिग	=	त्रीन्द्रिय–चींटी आदि
चदु	=	चतुरिन्द्रिय भौंरा आदि
पंचक्खा	=	मनुष्यादि पंचेन्द्रिय जीव
तसजीवा	=	त्रस जीव होते हैं।

अर्थ– पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक ये अनेक प्रकार के स्थावर जीव हैं, जो एकेन्द्रिय हैं। शंख आदि दो इन्द्रिय, तीन, चार और पाँच इन्द्रिय जीव त्रस कहलाते हैं।

तत्त्वार्थसूत्र में 'पृथिव्यप्तेजोवनस्पतयः स्थावराः' एवं 'द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः' सूत्र में भी यही कहा गया है। हमें छहढाला की यह पंक्ति सदा याद रखनी चाहिए– 'दुर्लभ लहि ज्यों चिंतामणि, त्यों पर्याय लही त्रसतणी।' यानि यह त्रस पर्याय चिंतामणि रत्न की प्राप्ति के समान दुर्लभ है।

चौदह जीवसमास

समणा अमणा णेया, पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे।
बादर सुहुमेइंदी, सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥12॥

अन्वयार्थ—

पंचिंदिय	=	पंचेन्द्रिय जीव
समणा	=	समनस्क और
अमणा	=	अमनस्क
णेया	=	जानो
परे सव्वे	=	शेष सभी जीव
णिम्मणा	=	असंज्ञी हैं।
एइंदी	=	एकेन्द्रिय जीव
बादर	=	बादर व
सुहुम	=	सूक्ष्म के भेद से दो प्रकार के हैं
सव्वे	=	ये सब सातों प्रकार के जीव
पज्जत्त	=	पर्याप्तक
इदरा	=	अपर्याप्तक हैं
य	=	और

अर्थ— पिछली गाथा में कहे गए त्रस व स्थावर जीवों को समास रूप में इस गाथा में बताया जा रहा है। पंचेन्द्रिय जीव समनस्क और अमनस्क के भेद से दो प्रकार के हैं। शेष यानि एक से चार इन्द्रिय तक के जीव अमनस्क ही होते हैं। एकेन्द्रिय बादर और सूक्ष्म के भेद से दो प्रकार के होते हैं। ये सब जीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं। **जीव समास**– जिसके द्वारा अनेक प्रकार के जीव के भेद जाने जा सकें, उसे जीव समास कहते हैं। जीव समास– 1. एकेन्द्रिय बादर 2. एकेन्द्रिय सूक्ष्म 3. द्वीन्द्रिय 4. त्रीन्द्रिय 5. चतुरिन्द्रिय 6. असैनी पंचेन्द्रिय 7. सैनी पंचेन्द्रिय, ये सभी 7 के पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक भेद होने से 14 जीव समास होते हैं।

पर्याप्तक-अपर्याप्तक- जिसकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो गई हो, उस जीव को पर्याप्तक कहते हैं। आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन ये 6 पर्याप्ति हैं। जिसकी शरीर पर्याप्ति अभी पूर्ण नहीं हुई हैं, पर आगे पूर्ण अवश्य होगी, उसे निवृत्त्यपर्याप्तक कहते हैं तथा जिसकी एक भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होगी, उसे अपर्याप्तक कहते हैं।

1. आहार पर्याप्ति- एक शरीर को छोड़कर नवीन शरीर के साधनभूत जिन नोकर्म वर्गणाओं को जीव ग्रहण करता है, उनको खल व रसभागरूप परिणमाने की शक्ति के पूर्ण हो जाने को आहार पर्याप्ति कहते हैं।

2. शरीर पर्याप्ति- गृहीत नोकर्मवर्गणाओं के स्कन्ध में से खल भाग को हड्डी आदि कठोर अवयव रूप तथा रसभाग को खून आदि द्रव अवयवरूप परिणमाने की शक्ति की पूर्णता को शरीर पर्याप्ति कहते हैं।

3. इन्द्रिय पर्याप्ति- गृहीत नोकर्मवर्गणाओं के स्कन्ध में से वर्गणाओं को योग्य स्थान पर द्रव्येन्द्रियों के आकार परिणमाने की शक्ति की पूर्णता को इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं।

4. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति- उन नोकर्मवर्गणाओं के कुछ स्कन्धों को श्वासोच्छ्वास रूप परिणमाने की शक्ति की पूर्णता को श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं।

5. भाषा पर्याप्ति- वचन रूप होने योग्य भाषावर्गणाओं को वचन रूप परिणमाने की शक्ति की पूर्णता को भाषा पर्याप्ति कहते हैं।

6. मनः पर्याप्ति- द्रव्यमनरूप होने योग्य मनोवर्गणाओं को द्रव्यमन के आकार रूप परिणमावने की शक्ति की पूर्णता को मनः पर्याप्ति कहते हैं। जीवों की पर्याप्ति गणना- एकेन्द्रिय जीवों के चार पर्याप्ति होती हैं - 1. आहार 2. शरीर 3. इन्द्रिय और 4. श्वासोच्छ्वास। विकलत्रय जीव व असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनः पर्याप्ति को छोड़कर पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के छहों पर्याप्तियाँ होती हैं।

मार्गणा और गुणस्थान के भेद से जीव के भेद

मग्गणगुणठाणेहि य, चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥13॥

अन्वयार्थ—

तह	=	तथा
संसारी	=	संसारी जीव के
असुद्धणया	=	अशुद्धनय से
मग्गण	=	मार्गणा
य	=	व
गुणठाणेहि	=	गुणस्थानों की अपेक्षा
चउदसहि	=	चौदह – चौदह भेद
हवंति	=	होते हैं
हु	=	किन्तु
सुद्धणया	=	शुद्धनय से
सव्वे	=	सभी जीव
सुद्धा	=	शुद्ध
विण्णेया	=	जानना चाहिए।

अर्थ— संसारी जीव को अशुद्धनय से चौदह–चौदह मार्गणा और गुणस्थानों में जानना चाहिए लेकिन शुद्ध निश्चय नय से सभी जीवों को शुद्ध जानना चाहिए।

मार्गणा–

गई इंदिय च काये, जोये वेदे कसाय णाणे य।
संजम दंसण लेस्सा, भणिया सम्मत्त सण्णि आहारे ॥

गो. जी. 142

अर्थात् 1. गति, 2. इन्द्रिय, 3. काय, 4. योग, 5. वेद, 6. कषाय, 7. ज्ञान, 8. संयम, 9. दर्शन, 10. लेश्या, 11. भव्यत्व, 12. सम्यक्त्व, 13. संज्ञित्व, 14. आहार।

गुणस्थान–

मिच्छो सासण मिस्सो, अविरद सम्मो य देसविरदो य।
विरदा पमत्त इदरो, अपुव्व अणियट्टि सुमो य ॥
उवसंत खीणमोहो, सजोगकेवलि जिणो अजोगी य।
चउदस जीव समासा, कमेण सिद्धा य णादव्वा ॥

गो. जी. 9, 10

1. मिथ्यात्व, 2. सासादन, 3. मिश्र, 4. अविरत सम्यक्त्व, 5. देशविरत, 6. प्रमत्तविरत, 7. अप्रमत्तविरत, 8. अपूर्वकरण, 9. अनिवृत्तिकरण, 10. सूक्ष्मसाम्पराय, 11. उपशान्तमोह, 12. क्षीणमोह, 13. सयोग केवली, 14. अयोग केवली।

पाइय पसंसा (प्राकृत प्रशंसा)

पाइयकव्वस्स नमो पाइयकव्वं च निम्मियं जेण।
ताहं चिय पणमामो पढिऊण य जे वि जाणंति ॥

वज्जालग्ग

प्राकृत काव्य को नमस्कार हो, जिसके द्वारा प्राकृत काव्य रचा गया है उसको भी नमस्कार हो तथा जो भी लोग काव्य को पढ़कर समझते हैं, उनको भी हम प्रणाम करते हैं।

णवमत्थ-दंसणं संनिवेस सिसिराओ बन्ध-रिद्धीओ।
अविरलमिणमो आभुवण-बन्धमिह णवर पययम्मि ॥

गउडवहो/९२

सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज तक प्रचुर परिमाण में नूतन-नूतन अर्थों का दर्शन तथा सुन्दर रचनावाली प्रबन्ध-सम्पत्ति यदि कहीं भी है, तो केवल प्राकृत में है।

सिद्ध जीवों का स्वरूप

णिक्क मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवएहिं संजुत्ता ॥14॥

अन्वयार्थ—

सिद्धा	=	सिद्ध भगवान्
णिक्कम्मा	=	अष्ट कर्मों से रहित हैं
अट्ठगुणा	=	अष्टगुणों से सहित हैं
चरमदेहदो	=	अन्तिम शरीर से
किंचूणा	=	कुछ कम हैं तथा
लोयग्गठिदा	=	लोक के अग्रभाग में स्थित हैं
णिच्चा	=	नित्य हैं और
उप्पादवएहिं	=	उत्पाद और व्यय से
संजुत्ता	=	संयुक्त हैं।

अर्थ— सिद्ध भगवान आठ कर्मों से रहित, आठ गुणों से सहित, अन्तिम शरीर से कुछ कम, लोक के अग्रभाग में स्थित हैं। वे नित्य हैं, उत्पाद-व्यय से संयुक्त होते हैं।

सिद्ध भगवान् के आठ गुण-

1. **अनंत ज्ञान-** परिपूर्ण, अनुपम, विशुद्ध, समस्त पदार्थों को जानने वाला।

2. **अनंत दर्शन-** बिना किसी की सहायता से समस्त मूर्त-अमूर्त द्रव्यों को सामान्य से देखने वाला।

3. **अनंत वीर्य-** अप्रतिहत सामर्थ्य उत्पन्न करने वाला।

4. **सम्यक्त्व-** समस्त जीवादि तत्त्वों के विषय में समीचीनता।

5. **सूक्ष्मत्व-** केवलज्ञान द्वारा गम्य अमूर्त प्रदेशात्मक होने वाला।

6. **अवगाहनत्व-** जहाँ एक सिद्ध हो वहाँ अनंत सिद्ध समाविष्ट होते हैं।

7. **अगुरुलघुत्व-** सिद्धों में छोटे-बड़ेपन का अभाव।

8. **अव्याबाधत्व-** किसी से बाधा को प्राप्त न हो।

अजीव द्रव्य का कथन

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गलमुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥ 15॥

अन्वयार्थ–

पुण	=	और
पुग्गल	=	पुद्‌गल
धम्मो	=	धर्म
अधम्म	=	अधर्म
आयासं	=	आकाश
कालो	=	काल
अज्जीवो	=	अजीव द्रव्य
णेयो	=	जानना चाहिए
पुग्गल	=	पुद्‌गल द्रव्य
रूवादिगुणो	=	रूपादि गुण वाला है
मुत्तो	=	मूर्तिक है
दु	=	परन्तु
सेसा	=	शेष
अमुत्ति	=	अमूर्तिक हैं।

अर्थ– पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य को अजीव जानना चाहिए। पुद्‌गल रूपादि गुण वाला होने से रूपी है, शेष द्रव्य अरूपी जानना चाहिए।

छहढाला में कहा गया है– चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं। अर्थात् जिसमें चेतना नहीं होती है, वह अजीव द्रव्य है। इसके पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच भेद हैं।

पुद्गल द्रव्य की पर्यायें

सद्दो बंधो सुहुमो, थूलो संठाणभेदतमछाया।
उज्जोदादवसहिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥16॥

अन्वयार्थ—

सद्दो	=	शब्द
बंधो	=	बंध
सुहुमो	=	सूक्ष्म
थूलो	=	स्थूल
संठाण	=	संस्थान
भेद	=	भेद
तम	=	अन्धकार
छाया	=	छाया
उज्जोद	=	उद्योत
आदवसहिया	=	आतप सहित
पुग्गलदव्वस्स	=	पुद्गल द्रव्य की
पज्जाया	=	पर्यायें होती हैं।

अर्थ— शब्द, बंध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, उद्योत, आतप सहित पुद्गल द्रव्य की पर्यायें होती हैं। इस प्रकार पुद्गल द्रव्य दश प्रकार की अवस्थाओं में रहता है।

इस गाथा का चिंतन व्यक्ति को आध्यात्मिकता की ओर ले जाता है। किसी के बुरे शब्द आदि सुनने के बाद वह विचार करता है कि ये तो पुद्गल की पर्यायें हैं। इसलिए इनके कारण क्रोधादि करना उचित नहीं है।

धर्मद्रव्य का लक्षण

गइ परिणयाण धम्मो, पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई ॥17॥

अन्वयार्थ–

गइपरिणयाण	=	गमन में परिणत
पुग्गलजीवाण	=	पुद्गल और जीवों को
गमणसहयारी	=	जो गमन में सहकारी निमित्त है
धम्मो	=	उसे धर्म द्रव्य कहते हैं
जह	=	जैसे
तोयं	=	जल
मच्छाणं	=	मछली के गमन में सहकारी है
सो	=	वह धर्म द्रव्य
अच्छंता	=	ठहरने वाले जीव या पुद्गल को
णेव	=	कभी नही
णेई	=	ले जाता है।

अर्थ– गमन करते हुए पुद्गल और जीवों को गमन करने में जो सहायक है, वह धर्मद्रव्य है। जैसे जल गमन करती हुई मछली को गमन करने में सहायक होता है। लेकिन यह धर्म द्रव्य ठहरे हुए जीव या पुद्गल को जबरन नहीं चलाता है।

आधुनिक विज्ञान भी कहता है – ब्रह्माण्ड में जीव और पुद्गल को चलने के लिये एक माध्यम की आवश्यकता होती है, वह माध्यम है ईथर। इसी धर्म द्रव्य को विज्ञान ने ईथर नामक तत्त्व माना है। धर्म द्रव्य एक है, अरूपी है, संपूर्ण लोकाकाश में व्याप्त है। तथा गमन में उदासीन रूप से सहायक होता है।

अधर्मद्रव्य का लक्षण

ठाणजुदाण अधम्मो, पुग्गलजीवाण ठाण सहयारी।
छाया जह पहियाणं, गच्छंता णेव सो धरई ॥18॥

अन्वयार्थ—

ठाणजुदाण	=	ठहरते हुए
पुग्गल	=	पुद्गल
जीवाण	=	और जीवों को
ठाण	=	ठहरने में
सहयारी	=	सहकारी कारण
अधम्मो	=	अधर्म द्रव्य है
जह	=	जैसे
पहियाणं	=	पथिकों के
छाया	=	ठहरने में छाया सहकारी कारण है
सो	=	वह अधर्म द्रव्य
गच्छंता	=	गमन करते हुए जीव और पुद्गलों को
णेव	=	नहीं
धरई	=	ठहराता है।

अर्थ— जैसे ठहरते हुए पथिक को वृक्ष की छाया उदासीन रूप से ठहरने के लिये सहायक होती है। उसी प्रकार ठहरते हुए जीव और पुद्गलों को अधर्म द्रव्य ठहरने में उदासीन रूप से कारण है। अधर्म द्रव्य गमन करते हुए जीव और पुद्गलों को जबरन नहीं ठहराता है।

आकाश द्रव्य का लक्षण

अवगासदाणजोग्गं, जीवादीणं वियाण आयासं।
जेण्हं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥19॥

अन्वयार्थ—

जीवादीणं	=	जीवादि समस्त द्रव्यों को
अवगास	=	अवकाश
दाण	=	देने में
जोग्गं	=	जो समर्थ है
आयासं	=	उसे आकाश
वियाण	=	जानो
लोगागासं	=	लोकाकाश
अल्लोगागासं	=	अलोकाकाश
दुविहं	=	दो प्रकार का है
इदि	=	ऐसा
जेण्हं	=	जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

अर्थ— जीवादि समस्त द्रव्यों को अवकाश देने में जो समर्थ है, उसे आकाश द्रव्य जानना चाहिए। वह आकाश द्रव्य लोकाकाश और अलोकाकाश के भेद से दो प्रकार का है। यद्यपि जीव और पुद्गल भी एक दूसरे को अवगाह देते हैं परन्तु सबका आधार आकाश ही है।

वस्तुतः लोक व्यवहार में जिसे आकाश या आसमान कहा जाता है, वह जैन द्रव्य व्यवस्था की दृष्टि से पुद्गल ही है क्योंकि रूपवान् पुद्गल ही होता है। आकाश द्रव्य अरूपी है, वह दिखाई नहीं देता है लेकिन सर्वत्र है।

आकाश द्रव्य के भेद

धम्माधम्मा कालो, पुग्गलजीवा य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥20॥

अन्वयार्थ–

जावदिये	=	जितने
आयासे	=	आकाश में
धम्माधम्मा	=	धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य
कालो	=	काल द्रव्य
पुग्गल	=	पुद्गल
जीवा	=	जीव द्रव्य
य	=	और
संति	=	हैं
सो	=	वह
लोगो	=	लोकाकाश है
तत्तो परदो	=	उसके परे
अलोग	=	अलोकाकाश
उत्तो	=	कहा गया है।

अर्थ– जितने आकाश में जीवादि छः द्रव्य पाये जाते हैं, वह लोकाकाश है। उसके बाहर अलोकाकाश है। इस प्रकार आकाश द्रव्य के दो भेद हो जाते हैं।

हम लोकाकाश में रहते हैं। लोकाकाश के बाहर धर्म द्रव्य नहीं होने से सिद्ध भगवान ऊर्ध्वगमन स्वभावी होने पर भी लोकाकाश के बाहर नहीं जा सकते हैं। तत्त्वार्थसूत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है– 'धर्मास्तिकायाभावात्' अर्थात् धर्मास्तिकाय के अभाव में ऊर्ध्वगमन स्वभावी सिद्ध आत्मा लोकाकाश के बाहर नहीं जाता है।

काल द्रव्य का लक्षण

दव्वपरिवट्टरूवो, जो सो कालो हवेइ ववहारो।
परिणामादीलक्खो, वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥21॥

अन्वयार्थ—

जो	=	जो
परिणामादी	=	परिणाम आदि
लक्खो	=	लक्षण वाला व
दव्व	=	द्रव्यों के
परिवट्टरूवो	=	परिवर्तन में कारण है
सो	=	वह
ववहारो	=	व्यवहार
कालो	=	काल
हवेइ	=	है
य	=	और
वट्टण	=	जिसका वर्तना ही
लक्खो	=	लक्षण है
परमट्ठो	=	वह परमार्थ काल/निश्चयकाल है।

अर्थ— काल द्रव्य प्रत्येक पदार्थ में होने वाले परिवर्तन का हेतु है। काल द्रव्य दो प्रकार का है निश्चय काल और व्यवहार काल। प्रतिसमय होने वाले परिवर्तन में सहकारी होना वर्तना अर्थात् वर्तना लक्षण वाला निश्चय काल द्रव्य कहलाता है। निश्चय काल द्रव्य को हम पकड़ नहीं सकते हैं। इसके समय, घड़ी, दिन-रात आदि कार्यों का व्यवहार होता है, वह व्यवहार कालद्रव्य है। परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व ये सभी व्यवहार कालद्रव्य के लक्षण हैं।

काल द्रव्य के प्रदेश

लोयायासपदेसे, इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का।
रयणाणं रासीमिव, ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥22॥

अन्वयार्थ–

इक्किक्के	=	एक – एक
लोयायास	=	लोकाकाश के
पदेसे	=	प्रदेश पर
रयणाणं	=	रत्नों की
रासीं	=	राशि के
इव	=	समान
इक्किक्का	=	एक–एक
कालाणू	=	काल द्रव्य का अणु
ठिया	=	स्थित है
ते	=	वे कालाणु
हु	=	निश्चय से
असंख	=	असंख्यात
दव्वाणि	=	द्रव्य हैं।

अर्थ– लोकाकाश के एक–एक प्रदेश पर एक–एक कालद्रव्य का अणु रत्नों की राशि के समान भरा है। लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उतने ही कालाणु हैं। लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी है तो कालाणु भी असंख्यात हैं।

रत्नों के ढेर का उदाहरण देने का अभिप्राय यह है कि जिस तरह एकत्र होने पर भी उसमें प्रत्येक रत्न जुदा–जुदा है, उसी प्रकार लोकाकाश में काल के अणु जुदे–जुदे भरे हुए हैं। आकाश के जितने स्थान में एक परमाणु ठहरता है, उतने स्थान को एक प्रदेश कहते हैं।

द्रव्य और अस्तिकाय के भेद

एवं छब्भेयमिदं, जीवाजीवप्पभेददो दव्वं।
उत्तं कालविजुत्तं, णादव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥23॥

अन्वयार्थ–

एवं	=	इस प्रकार
जीवाजीवप्प	=	जीव और अजीव के
भेददो	=	भेद से
दव्वं	=	द्रव्य
छब्भेयं	=	छह भेद वाला
उत्तं	=	कहा गया
दु	=	परन्तु
काल	=	काल द्रव्य को
विजुत्तं	=	छोड़कर
पंच	=	शेष पाँच द्रव्यों को
अस्थिकाया	=	अस्तिकाय
णादव्वा	=	जानना चाहिए।

अर्थ– इस प्रकार जीव और अजीव के भेद से द्रव्य छह प्रकार का कहा गया है। उनमें से काल द्रव्य को छोड़कर शेष पाँच द्रव्यों को अस्तिकाय जानना चाहिए।

यह अस्तिकाय जैनदर्शन का मौलिक पारिभाषिक शब्द है। आचार्य कुन्दकुन्द देव द्वारा तो पाँच अस्तिकाओं का वर्णन करने वाला पंचास्तिकाय संज्ञक ग्रन्थ ही लिख गया है, जो अत्यंत प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ है। पंचास्तिकाय का विशेष वर्णन जानने के इच्छुक लोग इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करते हैं।

अस्तिकाय का लक्षण

संति जदो तेणेदे, अत्थित्ति भणंति जिणवरा जम्हा।
काया इव बहुदेसा, तम्हा काया य अस्थिकाया य ॥24॥

अन्वयार्थ–

जदो	=	क्योंकि
एदे	=	पूर्वोक्त
संति	=	जीवादि द्रव्य विद्यमान हैं
तेण	=	इसलिए
जिणवरा	=	जिनेश्वर
अत्थित्ति	=	इनको अस्ति हैं ऐसा
भणंति	=	कहते हैं
य	=	और
जम्हा	=	क्योंकि
काया इव	=	ये काय के समान
बहुदेसा	=	बहु प्रदेशी हैं
तम्हा	=	इसलिए
काया	=	इनको काय कहते हैं
य	=	और
अत्थिकाया	=	ये पाँचों द्रव्य अस्तिकाय होते हैं।

अर्थ– जो सदा विद्यमान रहे जिसका कभी नाश न हो, उसे अस्ति कहते हैं। जो शरीर के समान बहुप्रदेशी है, उसे काय कहते हैं। जो अस्ति रूप भी हो और कायवान् भी हो, उसे अस्तिकाय कहते हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश अस्तिकाय हैं परन्तु काल द्रव्य अस्तिकाय नहीं है क्योंकि काल द्रव्य अस्ति तो है परन्तु एक प्रदेशी होने के कारण कायवान् नहीं है इसलिए काल द्रव्य अस्तिकाय नहीं है।

द्रव्यों के प्रदेशों की संख्या

होंति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा, कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥25॥

अन्वयार्थ—

जीवे	=	एक जीव द्रव्य में
धम्माधम्मे	=	धर्म द्रव्य में, अधर्म द्रव्य में
असंखा	=	असंख्यात प्रदेश हैं
आयासे	=	आकाश में
अणंत	=	अनन्त प्रदेश हैं
मुत्ते	=	मूर्त पुद्‍गल द्रव्य में
तिविह	=	संख्यात, असंख्यात, अनन्त
पदेसा	=	तीनों प्रकार के प्रदेश
होंति	=	होते हैं
कालस्सेगो	=	काल द्रव्य के एक ही प्रदेश है
तेण	=	इस कारण
सो	=	वह
काओ	=	कायवान्
ण	=	नहीं है अतः अस्तिकाय नहीं है।

अर्थ— एक जीव में, धर्म द्रव्य में, अधर्म द्रव्य में असंख्यात प्रदेश होते हैं। आकाश द्रव्य में अनंत प्रदेश होते हैं। पुद्‍गल द्रव्य में संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेश होते हैं। काल द्रव्य के एक ही प्रदेश होता है इसलिए वह कायवान् नहीं होता है।

परमाणु उपचार से काय है

एयपदेसो वि अणू, णाणाखंधप्पदेसदो होदि।
बहुदेसो उवयारा, तेण य काओ भणंति सव्वण्हू ॥26॥

अन्वयार्थ—

एयपदेसो	=	एक प्रदेश वाला
वि	=	होने पर भी
अणू	=	पुद्गल का अणु
णाणा	=	अनेक
खंधप्पदेसदो	=	स्कन्धों के प्रदेशों की दृष्टि से
बहुदेसो	=	बहुप्रदेशी
होदि	=	होता है
य	=	और
तेण	=	इस ही कारण
सव्वण्हू	=	सर्वज्ञ देव परमाणु को
उवयारा	=	उपचार से
काओ	=	उपचार से काय
भणंति	=	कहते हैं।

अर्थ— एक प्रदेश वाला होने पर भी अणु अनेक स्कन्धों से मिल सकने की अपेक्षा बहुप्रदेशी कहा जाता है इसलिए सर्वज्ञ देव ने उपचार से उसे काय कहा है। यहाँ पुद्गल परमाणु के कायवान् कहने का कारण बताया है। परमाणु उपचार से 'काय' कहा जाता है।

प्रदेश का स्वरूप एवं शक्ति

जावदियं आयासं, अविभागी पुग्गलाणु-वट्टद्धं।
तं खु पदेसं जाणे, सव्वाणुट्ठाण-दाणरिहं ॥27॥

अन्वयार्थ–

जावदियं	=	जितना
आयासं	=	आकाश
अविभागी	=	अविभाजित
पुग्गलाणु	=	परमाणु से
वट्टद्धं	=	रोका जाता है
तं	=	उसको
खु	=	निश्चय से
सव्वाणुट्ठाणदाण	=	सर्व परमाणुओं को स्थान देने मे
रिहं	=	ंसमर्थ
पदेसं	=	प्रदेश
जाणे	=	जानना चाहिये।

अर्थ– जितना आकाश पुद्गल का अविभागी परमाणु रोकता है यानि जितने स्थान में पुद्गल का वह परमाणु रहता है, जिसका दूसरा टुकडा न किया जा सके, आकाश के उतने स्थान को प्रदेश जानना चाहिए।

ऐसा सूक्ष्म विवेचन वैज्ञानिक शोध के लिए अत्यंत उपयोगी होता है।

द्वितीय तत्त्व / पदार्थ अधिकार

पदार्थों का नाम निर्देश

आसव बंधण संवर, णिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे।
जीवाजीवविसेसा, ते वि समासेण पभणामो॥28॥

अन्वयार्थ—

जीवाजीव	=	जीव और अजीव के
विसेसा	=	विशेष भेद
जे	=	जो
सपुण्णपावा	=	पुण्य और पाप सहित
आसव	=	आस्रव
बंधण	=	बंध
संवर	=	संवर
णिज्जर	=	निर्जरा
मोक्खा	=	व मोक्ष हैं
तेवि	=	उनको भी
समासेण	=	संक्षेप से
पभणामो	=	कहते हैं।

अर्थ— जीव और अजीव के विशेष यानि मिलने या बिछुडने से आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात अवस्थाएँ होती हैं। इस प्रकार सात तत्त्व होते हैं। उनमें पुण्य और पाप मिलाने से नौ पदार्थ हो जाते हैं। उनको भी यहाँ संक्षेप से कहा जाता है। इस अधिकार में तत्त्व और पदार्थ का वर्णन किया गया है।

भावास्त्रव एवं द्रव्यास्त्रव

आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो स विण्णेओ।
भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि ॥29॥

अन्वयार्थ–

अप्पणो	=	आत्मा के
जेण	=	जिस
परिणामेण	=	परिणाम से
कम्मं	=	कर्म
आसवदि	=	आता है
स	=	वह
जिणुत्तो	=	वह जिनेन्द्र देव के द्वारा कहा हुआ
भावासवो	=	भावास्त्रव
विण्णेओ	=	जानना चाहिए और
कम्मासवण	=	जो कर्मों का आना है
परो	=	वह दूसरा
होदि	=	द्रव्यास्त्रव होता है।

अर्थ– आत्मा के जिन परिणामो से कर्म आते हैं, वह जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा हुआ भावास्त्रव जानना चाहिए और ज्ञानावरणादि रूप कर्मों के आने को द्रव्यास्त्रव जानना चाहिए।

भावास्त्रव के भेद

मिच्छत्ता विरदिपमादजोग कोधादओऽथ विण्णेया।
पणपणपणदस तिय चदु, कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥30॥

अन्वयार्थ—

अथ	=	अब
पुव्वस्स	=	पूर्व के भावास्त्रव के
भेदा	=	भेद
मिच्छत्त	=	मिथ्यात्व
अविरदि	=	अविरति
पमाद	=	प्रमाद
जोग	=	योग
दु	=	और
कोधादओ	=	क्रोध आदि कषाय
कमसो	=	क्रम से
पण पण	=	पाँच, पाँच
पणदस	=	पंद्रह
तिय	=	तीन
चदु	=	और चार
विण्णेया	=	जानने चाहिए।

अर्थ— पूर्व का यानि पहला जो भावास्त्रव है, उसके क्रम से 5 मिथ्यात्व, 5 अविरति, 15 प्रमाद, 3 योग, 4 कषाय रूप भेद जानने चाहिए।

जीवादि पदार्थों का यथार्थ श्रद्धान नहीं होना मिथ्यात्व है। व्रतों का नहीं होना अविरति है। अच्छे कार्यों में अनादर का भाव होना प्रमाद है। जो आत्मा को दुःख दे, वह कषाय है। आत्म प्रदेशों में होने वाला हलन-चलन योग है।।

द्रव्यास्त्रव का स्वरूप एवं भेद

णाणावरणादीणं, जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि।
दव्वासवो स णेओ, अणेयभेओ जिणक्खादो ॥31॥

अन्वयार्थ–

णाणावरणादीणं	=	ज्ञानावरणादि कर्म रूप से परिणत होने
जोग्गं	=	योग्य
जं	=	जो
पुग्गलं	=	पुद्‌गल
समासवदि	=	आता है
स	=	वह
अणेय	=	अनेक
भेओ	=	भेद वाला
दव्वासवो	=	द्रव्यास्त्रव
णेओ	=	जानना चाहिए
जिणक्खादो	=	ऐसा श्री जिनेन्द्र देव ने कहा है।

अर्थ– ज्ञानावरणादि कर्मों के योग्य जो पुद्‌गल आता है, वह अनेक भेद वाला द्रव्यास्त्रव जानना चाहिए। ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

यह द्रव्यास्त्रव सामान्यतः एक होते हुए भी पुण्य-पाप एवं घाति-अघाति रूप से दो-दो प्रकार का है। द्रव्यास्त्रव ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय के भेद से 8 प्रकार के हैं और इन्हीं के प्रभेद 148 प्रकार के हो जाते हैं। इतना ही नहीं इसके संख्यात व असंख्यात भेद भी हो जाते हैं।

बन्ध तत्त्व का लक्षण

बज्झदि कम्मं जेण दु, चेदणभावेण भावबंधो सो।
कम्मादपदेसाणं, अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥32॥

अन्वयार्थ–

जेण	=	जिस
चेदणभावेण	=	चेतनभाव के निमित्त से
कम्मं	=	कर्म
बज्झदि	=	बंधता है
सो	=	वह
भावबंधो	=	भाव बंध है
दु	=	और
कम्मादपदेसाणं	=	कर्म और आत्मप्रदेशों का
अण्णोण	=	परस्पर में
पवेसणं	=	प्रवेश होना अर्थात् एकाकार होना
इदरो	=	द्रव्यबंध है।

अर्थ– आत्मा के जिन चेतन भावों से कर्म बंधता है, उस चेतन भाव को भावबंध कहते हैं। तथा कर्म और आत्मप्रदेशों का परस्पर में एकमेक हो जाना द्रव्य बंध है। गाय को जैसे रस्सी से बांधते हैं या कागज को गोंद से चिपकाते हैं वैसे बंध यहाँ नहीं होता है परन्तु यह बंध लोहे को अग्नि से गर्म करने पर जिस प्रकार अग्नि और लोहे का संश्लेष बंध (अन्योन्य प्रवेश) होता है, उसी प्रकार होता है।

1. **भावबंध**– कर्म बंध के हेतुभूत रागद्वेषादि परिणाम भावबंध हैं।

2. **द्रव्यबंध**– कर्म पुद्‌गलों का आत्मा के साथ एकाकार होना द्रव्यबन्ध है।

बन्ध के भेद और कारण

पयडिट्ठिदि अणुभागप्पदेस भेदा दु चदुविधो बंधो।
जोगा पयडिपदेसा, ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥33॥

अन्वयार्थ–

बंधो	=	बन्ध
पयडिट्ठिदि	=	प्रकृति और स्थिति,
अणुभागप्पदेस	=	अनुभाग और प्रदेश के
भेदा	=	भेद से
चदुविधो	=	चार प्रकार का होता है
पयडि	=	प्रकृति बंध
पदेसा	=	प्रदेश बंध तो
जोगा	=	योग से होते हैं
दु	=	तथा
ठिदि	=	स्थितिबंध
अणुभागा	=	अनुभागबंध
कसायदो	=	कषाय से
होंति	=	होते हैं।

अर्थ– प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश बंध के भेद से बंध चार प्रकार के हैं। इनमें से योग से प्रकृति और प्रदेश बंध होता है और कषाय से स्थिति और अनुभाग बंध होता है।

1. कर्म बंध के समय कर्म वर्गणाओं का स्वभाव निर्धारण होना **प्रकृति बंध** है।

2. बंधे हुए कर्म जब तक अपना फल देने की स्थिति में रहते हैं तब तक की काल मर्यादा को **स्थितिबंध** कहते हैं।

3. कर्मों की फलदान शक्ति को **अनुभाग बंध** कहते हैं।

4. बंधे हुए कर्म परमाणुओं की मात्रा को **प्रदेश बंध** कहते हैं।

भाव संवर और द्रव्य संवर

चेदणपरिणामो जो, कम्मस्सासव णिरोहणे हेदू।
सो भावसंवरो खलु, दव्वासवरोहणे अण्णो ॥34॥

अन्वयार्थ–

जो	=	जो
चेदण	=	चेतन
परिणामो	=	परिणाम
कम्मस्सासव	=	कर्म के आस्रव के
णिरोहणे	=	रोकने में
हेदू	=	कारण है
सो	=	वह
खलु	=	निश्चय से
भावसंवरो	=	भाव संवर है और
दव्वासवरोहणे	=	द्रव्यास्रव का रुकना
अण्णो	=	द्रव्य संवर है।

अर्थ– संवर दो प्रकार का है – भावसंवर, द्रव्यसंवर। आत्मा के जिन चेतन परिणामों से कर्मों का आस्रव रुकता है, वह भावसंवर है तथा कर्मों का आगमन रुक जाना, द्रव्यसंवर कहलाता है। भावसंवर कारण है तो द्रव्यसंवर कार्य है।

भाव संवर के भेद

वदसमिदीगुत्तीओ, धम्माणुपेहा परीसहजओ य।
चारित्तं बहुभेया, णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥35॥

अन्वयार्थ—

वद	=	व्रत
समिदी	=	समिति
गुत्तीओ	=	गुप्ति
धम्म	=	धर्म
अणुपेहा	=	अनुप्रेक्षा
परीसहजओ	=	परीषहजय
य	=	और
बहुभेया	=	बहुत प्रकार वाला
चारित्तं	=	चारित्र
भावसंवर	=	भावसंवर के
विसेसा	=	विशेष प्रकार
णायव्वा	=	जानना चाहिए।

अर्थ— व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा,परीषह जय और चारित्र ये भावसंवर के विशेष प्रकार जानना चाहिए। वे इस प्रकार हैं – 5 व्रत, समिति, 3 गुप्ति, 10 धर्म, 12 अनुप्रेक्षा, 22 परीषहजय और 5 चारित्र। इस प्रकार भावसंवर के बहुत भेद हैं।

निर्जरा तत्त्व का लक्षण एवं भेद

जह कालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण।
भावेण सडदि णेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥36॥

अन्वयार्थ—

जेण	=	जिस
भावेण	=	आत्म परिणाम से
जहकालेण	=	समय पाकर
य	=	या
तवेण	=	तपस्या के द्वारा
भुत्तरसं	=	भोगा गया है रस जिसका
कम्मपुग्गलं	=	ऐसा कर्म पुद्गल
सडदि	=	झड़ता है, वह भाव निर्जरा है।
तस्सडणं	=	कर्म पुद्गलों का झड़ना द्रव्य निर्जरा है
इदि	=	इस प्रकार
णिज्जरा	=	निर्जरा
दुविहा	=	दो प्रकार की
णेया	=	जाननी चाहिये।

अर्थ— आत्मा के जिस परिणाम से समय पाकर या तपस्या के द्वारा उसका रस भोग लिए जाने पर जो कर्म पुद्गल आत्मा से झड जाता है, वह परिणाम भाव निर्जरा है। तथा कर्मों का आत्मा से पृथक् हो जाना द्रव्य निर्जरा है। इस प्रकार निर्जरा के दो भेद हैं :- 1. द्रव्य निर्जरा 2. भाव निर्जरा। सविपाक और अविपाक के भेद से भी निर्जरा दो प्रकार की कही गई है।

मोक्ष तत्त्व का लक्षण एवं भेद

सव्वस्स कम्मणो जो, खयहेदू अप्पणो हु परिणामो।
णेओ स भावमोक्खो, दव्वविमोक्खो य कम्मपुहभावो ॥37॥

अन्वयार्थ—

हु	=	निश्चय से
अप्पणो	=	आत्मा का
जो	=	जो
परिणामो	=	परिणाम
सव्वस्स	=	समस्त
कम्मणो	=	कर्मों के
खयहेदू	=	क्षय का कारण है
स	=	वह
भावमोक्खो	=	भाव मोक्ष है
य	=	और
कम्मपुह भावो	=	कर्मों के पृथक् हो जाने को
दव्वविमोक्खो	=	द्रव्य मोक्ष
णेओ	=	जानना चाहिए।

अर्थ— आत्मा के जिन परिणामों से समस्त कर्म दूर होते हैं, उन परिणामों को भावमोक्ष कहते हैं। तथा सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होना द्रव्यमोक्ष है।

(भावमोक्ष, केवलज्ञान की उत्पत्ति, जीवन्मुक्त, अर्हन्त पद ये सब एकार्थक हैं)

पुण्य और पाप

सुहअसुहभावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं सुहाउ णामं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥38॥

अन्वयार्थ—

सुह	=	शुभ व
असुहभाव	=	अशुभ भाव से
जुत्ता	=	युक्त
जीवा	=	जीव
खलु	=	निश्चय ही
पुण्णं	=	पुण्य और
पावं	=	पाप रूप
हवंति	=	होते हैं
सादं	=	सातावेदनीय
सुहाउ	=	शुभायु
णामं	=	शुभनाम
गोदं	=	तथा उच्चगोत्र
पुण्णं	=	ये सब कर्म प्रकृतियाँ पुण्य रूप हैं
च	=	और
पराणि	=	बाकी सब कर्मप्रकृतियाँ
पावं	=	पाप रूप हैं।

अर्थ— शुभ भाव युक्त पुण्य जीव कहलाते हैं और अशुभ भाव युक्त पाप जीव कहलाते हैं। साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम, उच्च गोत्र ये पुण्य प्रकृतियाँ हैं और शेष पाप प्रकृतियाँ हैं।

तृतीय मोक्षमार्ग अधिकार

मोक्ष का कारण

सम्मद्दंसणणाणं, चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।
ववहारा णिच्छयदो, तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥39॥

अन्वयार्थ—

ववहारा	=	व्यवहार नय से
सम्मद्दंसण	=	सम्यग्दर्शन
णाणं	=	सम्यग्ज्ञान
चरणं	=	सम्यक् चारित्र को
मोक्खस्स	=	मोक्ष का
कारणं	=	कारण
जाणे	=	जानो
णिच्छयदो	=	निश्चय नय से
तत्तिय	=	तीनों
मइओ	=	सहित
णिओ	=	निज
अप्पा	=	आत्मा

अर्थ— व्यवहार नय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र मोक्ष के कारण अर्थात् व्यवहार मोक्षमार्ग है। निश्चय नय से उन तीनों से सहित जो आत्मा है, वह मोक्ष का कारण है।

तत्त्वार्थसूत्र का पहला ही सूत्र है– सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्राणि मोक्षमार्गः। तीनों की एकता होने पर ही मोक्षमार्ग बनता है। ये अलग–अलग मोक्षमार्ग नहीं हैं।

मोक्ष का कारण : रत्नत्रय

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियम्हि।
तम्हा तत्तिय मइउ, होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥40॥

अन्वयार्थ–

अप्पाणं	=	आत्मा को
मुइत्तु	=	छोड़कर
अण्ण	=	अन्य
दवियम्हि	=	द्रव्य में
रयणत्तयं	=	रत्नत्रय
ण	=	नहीं
वट्टइ	=	रहता है
तम्हा	=	इस कारण से
तत्तिय	=	उन तीनों
मइउ	=	सहित
आदा	=	रत्नत्रयात्मक आत्मा ही
हु	=	निश्चय से
मोक्खस्स	=	मोक्ष का
कारणं	=	कारण
होदि	=	है।

अर्थ– सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूप रत्नत्रय आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्यों में नहीं पाया जाता है इसलिए सम्यग्दर्शनादि सहित आत्मा ही मोक्ष का कारण होता है।

सम्यग्दर्शन का लक्षण

जीवादी सद्दहणं, सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेसविमुक्कं, णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि ॥41॥

अन्वयार्थ—

जीवादी	=	जीवादि तत्त्वों का
सद्दहणं	=	यथार्थ श्रद्धान करना
सम्मत्तं	=	सम्यक्त्व है
तं	=	वह
अप्पणो	=	आत्मा का
रूवं	=	स्वभाव है
तु	=	और
जम्हि	=	जिस सम्यग्दर्शन के
सदि	=	होने पर
णाणं	=	ज्ञान
खु	=	निश्चय से
दुरभिणिवेस	=	विपरीत अभिप्राय से
विमुक्कं	=	रहित होता हुआ
सम्मं	=	सम्यक्
होदि	=	हो जाता है।

अर्थ— जीवादि तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। वह आत्मा का स्वभाव है। उस सम्यग्दर्शन के होने पर, ज्ञान संशय, विपर्यय एवं अनध्यवसाय से रहित होकर सम्यग्ज्ञान हो जाता है।

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

संसय विमोह विब्भम, विवज्जियं अप्पपरसरूवस्स।
गहणं सम्मण्णाणं, सायारमणेयभेयं च ॥42॥

अन्वयार्थ—

अप्प	=	अपने आत्मा के
पर	=	पर पदार्थों के
सरूवस्स	=	स्वरूप का
संसय	=	संशय
विमोह	=	विपर्यय
विब्भम	=	अनध्यवसाय रूप मिथ्याज्ञान से
विवज्जियं	=	रहित
गहणं	=	ग्रहण करने को
सम्मण्णाणं	=	सम्यग्ज्ञान कहते हैं।
सायारं	=	यह ज्ञान साकार
च	=	और
अणेयभेयं	=	अनेक भेद वाला है।

अर्थ— अपने आत्मा और पर पदार्थों के स्वरूप का संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित ग्रहण करने को सम्यग्ज्ञान कहा गया है। यह साकार रूप है और अनेक भेद वाला होता है।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा गया है कि जो न कम जानता है, न ज्यादा जानता है, जैसे का तैसा जानता है, विपरीतता के बिना जानता है, संदेह रहित जानता है, वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

दर्शन का स्वरूप

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं।
अविसेसिदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णए समए ॥43॥

अन्वयार्थ–

अट्ठे	=	पदार्थों को
अविसेसिदूण	=	विशेषता नहीं करके
आयारं	=	आकार को
णेव	=	नहीं
कट्टु	=	ग्रहण करके
जं	=	जो
भावाणं	=	पदार्थों का
सामण्णं	=	सामान्य
गहणं	=	ग्रहण करना है
इदि	=	वह
समए	=	शास्त्रों में
दंसणं	=	दर्शन
भण्णए	=	कहा गया है।

अर्थ– बिना किसी विशेषता के, आकार को ग्रहण किए बिना जो पदार्थों का समान्य ग्रहण है, वह आगम में दर्शन कहा है। विशेष– यहाँ जिस दर्शन की बात की गई है, वह सम्यग्दर्शन नहीं है।

आचार्य कुन्दकुन्द देव ने दर्शन पाहुड आदि ग्रन्थों में दिगम्बर मुनि-मुद्रा को भी दर्शन कहा है।

दर्शन और ज्ञान का साहचर्य

दंसणपुव्वं णाणं, छदमत्थाणं ण दोण्णि उवउग्गा।
जुगवं जम्हा केवलि, णाहे जुगवं तु ते दो वि ॥44॥

अन्वयार्थ—

छदमत्थाणं	=	अल्पज्ञानियों के
दंसणपुव्वं	=	दर्शन पूर्वक
णाणं	=	ज्ञान होता है
जम्हा	=	क्योंकि
दोण्णि	=	दोनों
उवउग्गा	=	उपयोग
जुगवं	=	एक साथ
ण	=	नहीं होते हैं
तु	=	किन्तु
केवलि णाहे	=	केवलज्ञानी के
दो वि	=	दोनों ही
जुगवं	=	एक साथ होते हैं।

अर्थ— छद्मस्थ जीवों के दर्शन पूर्वक ज्ञान होता है क्योंकि उनके दोनों उपयोग एक साथ नहीं होते हैं किन्तु केवलज्ञानी के दोनों उपयोग एक साथ होते हैं।

विशेष– छद्म का अर्थ ज्ञानावरण एवं दर्शनावरण कर्म है। इन दोनों कर्मों से आवृत्त होने वाला जीव छद्मस्थ है अर्थात् पहले गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक, ऐसा जो छद्मस्थ जीव है वह दर्शन पूर्वक ज्ञान करता है।

व्यवहार चारित्र का लक्षण एवं भेद

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं, ववहारणया दु जिणभणियं ॥45॥

अन्वयार्थ–

ववहारणया	=	व्यवहार नय से
असुहादो	=	अशुभ क्रिया से
विणिवित्ती	=	निवृत्ति होने
य	=	और
सुहे	=	शुभ क्रिया में
पवित्ति	=	प्रवृत्ति होने को
जिणभणियं	=	जिनेन्द्र देव के द्वारा कहा हुआ
चारित्तं जाण	=	चारित्र जानो
दु	=	वह चारित्र
वद	=	व्रत
समिदि	=	समिति और
गुत्ति	=	गुप्ति
रूवं	=	रूप है।

अर्थ– व्यवहार नय से अशुभ प्रवृत्तियों से निवृत्ति एवं शुभ में प्रवृत्ति होना ही जिनेन्द्र देव द्वारा कहा गया चारित्र जानना चाहिए। वह व्यवहार चारित्र व्रत, समिति और गुप्तिरूप है।

इस गाथा से ज्ञात होता है कि शुभ क्रियाएँ करना भी चारित्र है। पाँचवे और छठवें गुणस्थान में निश्चय चारित्र नहीं होता है लेकिन निर्जरा होती है इसलिए ये निश्चित है कि इन गुणस्थानों में होने वाली निर्जरा शुभ चारित्र के बल से होती है।

निश्चय चारित्र का लक्षण

बहिरब्भंतर किरिया, रोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं, तं परमं सम्मचारित्तं ॥46॥

अन्वयार्थ—

भव	=	संसार के
कारणप्प	=	कारणों के
णासट्ठं	=	नाश के लिये
णाणिस्स	=	ज्ञानी जीव के
जं	=	जो
बहिरब्भंतर	=	बाह्य तथा आभ्यंतर
किरिया	=	क्रियाओं का
रोहो	=	निरोध
तं	=	वह
परमं	=	निश्चय
सम्मचारित्तं	=	सम्यक् चारित्र है
जिणुत्तं	=	जिनेन्द्र देव ने कहा है

अर्थ— संसार के कारणों के नाश के लिए ज्ञानी जीव के जो बाह्य तथा आभ्यंतर क्रियाओं का निरोध है, उसे जिनेन्द्र देव ने निश्चय सम्यग्चारित्र कहा है।

ध्यानाभ्यास करने का लक्ष्य

दुविहं पि मोक्खहेडं, झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तम्हा पयत्तचित्ता, जूयं झाणं समब्भसह ॥47॥

अन्वयार्थ–

जं	=	जिस कारण से
मुणी	=	मुनि
दुविहं पि	=	दोनों ही प्रकार के
मोक्ख	=	मोक्ष के
हेडं	=	कारणों को
झाणे	=	ध्यान में
णियमा	=	नियम से
पाउणदि	=	प्राप्त कर लेता है
तम्हा	=	उस कारण से
पयत्तचित्ता	=	प्रयत्नचित्त होकर
जूयं	=	तुम सब
झाणं	=	ध्यान का
समब्भसह	=	अच्छी प्रकार से अभ्यास करो।

अर्थ– जिस कारण से मुनिजन दोनों ही प्रकार के हेतुओं को ध्यान में नियम से प्राप्त कर लेते हैं, उस कारण से तुम सब प्रयत्नशील होकर ध्यान का अच्छी तरह से अभ्यास करो।

इस गाथा से स्पष्ट है कि व्यवहार एवं निश्चय दोनों ही मोक्षमार्ग मुनिराज के ही होते हैं।

ध्यान की एकाग्रता का उपाय

मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।
थिरमिच्छहि जइ चित्तं, विचित्त झाणप्पसिद्धीए ॥48॥

अन्वयार्थ—

विचित्त	=	अनेक प्रकार के
झाणप्पसिद्धीए	=	ध्यान की सिद्धि के लिये
जइ चित्तं	=	यदि चित्त को
थिरमिच्छहि	=	स्थिर करना चाहते हो तो
इट्ठणिट्ठ	=	इष्ट व अनिष्ट
अत्थेसु	=	पदार्थों में
मुज्झह	=	मोह
मा	=	मत करो
रज्जह	=	राग
मा	=	मत
करो	=	और
दुस्सह	=	द्वेष
मा	=	मत करो।

अर्थ— अनेक प्रकार के ध्यान की सिद्धि के लिए यदि चित्त को स्थिर करना चाहते हो तो इष्ट व अनिष्ट पदार्थों में मोह मत करो, राग मत करो और द्वेष मत करो।

गाथा से स्पष्ट है कि मोह, राग एवं द्वेष सहित जीवों के ध्यान की सिद्धि नहीं हो सकती है।

मन्त्र पदों का जाप्य और ध्यान

पणतीस सोल छप्पण, चदु दुगमेगं च जवहज्झाएह।
परमेट्ठिवाचयाणं, अण्णं च गुरूवएसेण ॥49॥

अन्वयार्थ–

परमेट्ठि	=	परमेष्ठियों के
वाचयाणं	=	वाचक
पणतीस	=	पैंतीस
सोल	=	सोलह
छप्पण	=	छह, पाँच
चदु	=	चार
दुगं	=	दो
एगं	=	एक अक्षरों के मन्त्रों को
जवह	=	जपो और
झाएह	=	ध्यान करो तथा
च	=	और
गुरूवएसेण	=	गुरु के उपदेश के अनुसार
अण्णं	=	अन्य भी मन्त्रों का जाप तथा ध्यान

अर्थ– परमेष्ठियों के वाचक पैंतीस, सोलह, पाँच, चार, दो और एक अक्षर वाले तथा गुरु के उपदेश के अनुसार अन्य मन्त्रों का भी जाप तथा ध्यान करना चाहिए।

1. **पैंतीस अक्षरों का मंत्र**– णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं। णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥
2. **सोलह अक्षरों का मंत्र**– अरिहंत सिद्ध आइरिय उवज्झाय साहू।
3. **छह अक्षरों के मंत्र**– अरिहंत सिद्ध अथवा ओम् नमः सिद्धेभ्यः।
4. **पाँच अक्षरों का मंत्र**– असि आ उ सा।
5. **चार अक्षरों के दो मंत्र**– अरिहंत अथवा अ सि साहू।
6. **दो अक्षरों के दो मंत्र**– सिद्ध अथवा ओम् ह्रीं।
7. **एक अक्षर का मंत्र**– ओम्।

अरिहन्त परमेष्ठी का स्वरूप

णट्ठ चदुघाइकम्मो, दंसण सुह णाण वीरिय मईओ।
सुहदेहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥50॥

अन्वयार्थ–

चदु	=	चार
घाइकम्मो	=	घातिया कर्म जिनके
णट्ठ	=	नष्ट हो गये हैं
दंसण	=	अनन्तदर्शन
सुह	=	अनन्तसुख
णाण	=	अनन्तज्ञान
वीरिय	=	अनन्तवीर्य
मईओ	=	सहित हैं
सुह	=	शुभ
देहत्थो	=	परम औदारिक शरीर में स्थित हैं
सुद्धो	=	जो शुद्ध हैं
अप्पा	=	वे आत्मा
अरिहो	=	अरिहन्त परमेष्ठी हैं और वे
विचिंतिंज्जो	=	ध्यान के योग्य हैं।

अर्थ– चार घातिया कर्म नाश होने से जो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनंत वीर्य सहित हैं, शुद्ध परम औदारिक शरीर में स्थित हैं, शुद्ध हैं, आत्मा अरिहन्त परमेष्ठी हैं और ध्यान करने योग्य हैं।

कोई भी जीव सिद्ध होने से पहले अरिहंत अवश्य बनता है। अरिहंत परमेष्ठी का तेरहवां गुणस्थान होता है, उसको पार करके ही सिद्धत्व प्रकट होता है।

परम औदारिक शरीर होने से उनके शरीर में जीवराशि नहीं बचती है।

सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप

णट्ठट्ठ कम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा, सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥51॥

अन्वयार्थ—

णट्ठट्ठ	=	नष्ट हो गए है
कम्पदेहो	=	जिसके अष्ट कर्म और शरीर
लोयालोयस्स	=	लोक और अलोक को
जाणओ	=	जानने
दट्ठा	=	देखने वाला है
पुरिसायारो	=	जिस पुरुष देह से मोक्ष हुआ है उस पुरुष के आकार वाला
अप्पा	=	आत्मा
सिद्धो	=	सिद्ध परमेष्ठी
लोय	=	लोक के
सिहरत्थो	=	शिखर पर स्थित सिद्ध परमेष्ठी का
झाएह	=	ध्यान करो।

अर्थ— जिस आत्मा के आठों कर्म नाश हो गए हैं, जो लोक और अलोक को देखने और जानने वाले हैं, जो पुरुषाकार हैं और लोक के शिखर पर स्थित हैं, ऐसे सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान करना चाहिए।

आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप

दंसणणाणपहाणे, वीरिय-चारित्त - वरतवायारे।
अप्पं परं च जुंजइ, सो आइरिओ मुणी झेओ ॥52॥

अन्वयार्थ—

जो	=	जो
मुणी	=	मुनि
दंसणणाण	=	दर्शन और ज्ञान की
पहाणे	=	प्रधानता सहित
वीरिय	=	वीर्य
चारित्त	=	चारित्र
वर	=	श्रेष्ठ
तवायारे	=	तपाचार में
अप्पं	=	अपने को
च	=	और
परं	=	दूसरों को
जुंजइ	=	लगाते हैं
सो	=	वे
आइरिओ	=	आचार्य परमेष्ठी
झेओ	=	ध्यान करने योग्य हैं।

अर्थ— जो मुनि दर्शन और ज्ञान की प्रधानता सहित वीर्य, चारित्र तथा श्रेष्ठ तपाचार में अपने व पर को लगाते हैं, वे आचार्य हैं और ध्यान करने योग्य हैं।

उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप

जो रयणत्तयजुत्तो, णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो।
सो उवज्झाओ अप्पा, जदिवरवसहो णमो तस्स ॥53॥

अन्वयार्थ–

जो	=	जो
रयणत्तय	=	रत्नत्रय से
जुत्तो	=	युक्त हैं
णिच्चं	=	नित्य
धम्मोवदेसणे	=	धर्म का उपदेश देने में
णिरदो	=	निरत हैं
सो	=	वह
जदिवरवसहो	=	वह मुनिवरों में प्रधान
अप्पा	=	आत्मा
उवज्झाओ	=	उपाध्याय परमेष्ठी हैं
तस्स	=	उनको
णमो	=	नमस्कार हो।

अर्थ– जो रत्नत्रय से युक्त हैं, सदा धर्म का उपदेश देने में निरत रहते हैं, मुनियों में प्रधान हैं, ऐसे आत्मा उपध्याय परमेष्ठी हैं, उनको नमस्कार हो।

साधु परमेष्ठी का स्वरूप

दंसणणाणसमग्गं, मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्चसुद्धं, साहू सो मुणी णमो तस्स ॥54॥

अन्वयार्थ–

हु	=	निश्चय से
जो	=	जो
णिच्चसुद्धं	=	नित्य शुद्ध
मोक्खस्स	=	मोक्ष के
मग्गं	=	मार्गभूत
दंसण	=	दर्शन
णाण	=	ज्ञान से
समग्गं	=	परिपूर्ण
चारित्तं	=	चारित्र को
साधयदि	=	साधता है
सो	=	वह
मुणी	=	मुनि
साहू	=	साधु परमेष्ठी हैं
तस्स	=	उनको
णमो	=	नमस्कार हो।

अर्थ– निश्चय ही जो नित्य शुद्ध मोक्ष के मार्ग दर्शन–ज्ञान से परिपूर्ण चारित्र को साधते हैं, वे मुनि साधु परमेष्ठी हैं, उनको नमस्कार हो।

निश्चय ध्यान का पात्र कौन?

जं किंचिवि चिंतंतो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूणय एयत्तं, तदाहु तं तस्स णिच्छयं झाणं ॥55॥

अन्वयार्थ—

साहू	=	साधु
जदा	=	जिस समय
जं	=	जो
किंचिवि	=	कुछ भी
चिंतंतो	=	चिंतन करता हुआ
एयत्तं	=	एकाग्रता को
लद्धूणय	=	प्राप्त करके
णिरीह वित्ती	=	इच्छा रहित
हवे	=	होता है
तदा	=	उस समय
तस्स	=	उस साधु का
तं	=	वह
णिच्छयं	=	निश्चय
झाणं	=	ध्यान
आहु	=	कहा जाता है।

अर्थ— साधु जिस समय जो कुछ भी चिंतन करता हुआ एकाग्रता को प्राप्त करके इच्छा रहित होता है, उस समय उस साधु के निश्चय ध्यान कहा जाता है।

आत्मलीनता और परम ध्यान

मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिंतह किंवि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥56॥

अन्वयार्थ—

किंवि	=	कुछ भी
मा चिट्ठह	=	चेष्टा मत करो
मा जंपह	=	मत बोलो
मा चिंतह	=	मत विचारो
जेण	=	जिससे
अप्पा	=	आत्मा
अप्पम्मि	=	आत्मा में
रओ	=	रत होता हुआ
थिरो	=	स्थिर
होइ	=	हो जाय
इणमेव	=	यह ही
परं झाणं	=	परम ध्यान
हवे	=	है।

अर्थ— कुछ भी चेष्टा मत करो, कुछ भी बोलो मत, कुछ भी विचारो मत, जिससे आत्मा आत्मा में रत होता हुआ स्थिर हो जाये, यह ही परम ध्यान है।

ध्यान के साधन तप, श्रुत और व्रत

तवसुदवदवं चेदा, ज्झाण रहधुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तियणिरदा, तल्लद्धीए सदा होह ॥57॥

अन्वयार्थ–

जम्हा	=	क्योंकि
तव	=	तप
सुद	=	श्रुत
वदवं	=	व्रत वाली
चेदा	=	आत्मा ही
झाणरह	=	ध्यान रूपी रथ की
धुरंधरो	=	धुरी को धारण करने वाला
हवे	=	होता है
तम्हा	=	इसलिए
तल्लद्धीए	=	उस ध्यान की प्राप्ति के लिये
सदा	=	हमेशा
तत्तिय	=	तप, श्रुत और व्रत इन तीनों में
णिरदा	=	निरत
होह	=	होओ।

अर्थ– क्योंकि तप, श्रुत और व्रत वाला आत्मा ही ध्यान रूपी रथ की धुरी धारण करने में समर्थ होता है इसलिए उस ध्यान की प्राप्ति के लिए हमेशा तप, श्रुत और व्रत इन तीनों में निरत होना चाहिए।

ग्रन्थकर्ता की लघुता एवं निवेदन

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा, दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंद मुणिणा भणियं जं ॥58॥

अन्वयार्थ–

तणु	=	थोड़े
सुत्त	=	श्रुत को
धरेण	=	धारण करने वाले
णेमिचंद	=	मुझ नेमिचन्द्र
मुणिणा	=	मुनि के द्वारा
जं	=	जो
भणियं	=	कहा गया है
इणं	=	ऐसे इस
दव्वसंगहं	=	द्रव्य संग्रह को
दोससंचयचुदा	=	समस्त दोषों से रहित
सुद	=	श्रुत में
पुण्णा	=	परिपूर्ण
मुणिणाहा	=	ऐसे प्रधान मुनि
सोधयंतु	=	शुद्ध करें।

अर्थ– ग्रन्थकार आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव कहते हैं कि थोड़े से श्रुत को जानने वाले मेरे द्वारा जो यह द्रव्यसंग्रह कहा गया है, इसको समस्त दोषों से रहित श्रुत में परिपूर्ण प्रधान मुनि शुद्ध करें।

जिणवाणी-थुदी

भारदी-थुदी

प्राकृताचार्य श्री सुनीलसागर जी महाराज

(गायन शैली- जयतु संस्कृतं...)

जयदु भारदी, जयदु भारदी-२,

जिणवाणी सारदा, सुयदेवी सरस्सदी-२।

वीरमुह-णिग्गदा, गोदमादि-गंथिदा;

सुदसूरी-भासिदा, गुणधरादि-विरइदा।

कुंदकुंद-भारदी, सुदधरादि धारदी;

जिणवाणी सारदा, सुयदेवी सरस्सदी ॥ जयदु. १ ॥

अण्णाण-तम-हारिणी, सण्णाण-सुद-कारिणी,

सुहद-संति दायिणी, बारसंग धारिणी।

मिच्छत्त-अंध णासदि, सम्मत्त सम्म सासदि,

जिणवाणी सारदा, सुयदेवी सरस्सदी ॥ जयदु. २ ॥

विसय-विस-रेयणं, जम्ममरण छेयणं,

जिणवयण-मोसहं, सत्थ-हि सुहारसं।

कम्मपुंज य जारदि, भवजलहि तारदि,

जिणवाणी सारदा, सुयदेवी सरस्सदी ॥ जयदु. ३ ॥

पंजीयन क्रमांक - 06/09/01/15303/25

प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन (रजि.) (PBVF)

PRAKRIT BHASHA VIKAS FOUNDATION

पावन प्रेरणा : प्राकृताचार्यश्री 108 सुनीलसागरजी महाराज।

प्रशस्त प्रसंग : भारत सरकार द्वारा प्राकृत भाषा को शास्त्रीय भाषा की घोषणा।

मूल उद्देश्य : प्राचीनतम प्राकृत भाषा का संरक्षण व संवर्धन।

नम्र निवेदन : श्रुत पंचमी पर्व को श्रुत पंचमी-प्राकृत दिवस के रूप में मनाएँ।

कार्ययोजनाएँ : 1. पंचवर्षीय प्राकृत अध्ययन, 2. प्राकृत पाठशाला, 3. प्राकृत प्रतियोगिताएँ, 4. साहित्य प्रकाशन, 5. पाण्डुलिपि सम्पादन, 6. पुरस्कार एवं उपाधि अलंकरण, 7. प्राकृत विद्या शिक्षण शिविर, 8. प्राकृत प्रशिक्षण शिविर, 9. प्राकृत संभाषण शिविर, 10. संगोष्ठी/कार्यशाला, 11. वार्षिक अधिवेशन, 12. शोध पत्रिका प्रकाशन (हिन्दी), 13. न्यूज बुलेटिन (हिन्दी), 14. अंग्रेजी मेगजीन, 15. प्राकृत पत्रिका आदि।

प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन समिति हेतु राशि

शिरोमणि संरक्षक	- 500000/-	परम संरक्षक	- 111000/-
संरक्षक	- 51000/-	प्राकृत गौरव	- 21000/-
प्राकृतस्नेही	- 11000/-	प्राकृतप्रेमी	- 5100/-
प्राकृत शिविर (प्रति शिविर)	- 31000/-		

खाता नाम-
PRAKRIT BHASHA VIKAS FOUNDATION
खाता नम्बर- 105594600000279
IFSC- YESB0001055
बैंक का नाम- YES BANK SAGAR

आपके सहयोग हेतु
prakrit bhasha vikas foundation
क्यू.आर.कोड

संस्था का पंजीकृत कार्यालय- 53/1, पिपरिया धर्मश्री मार्ग, सागर (म.प्र.)
WEBSITE - www.prakritbhasha.com, EMAIL - prakritfoundation25@gmail.com
CONTACT NO. - 93290-92390

अध्यक्ष
डॉ. ऋषभचन्द्र जैन फौजदार, दमोह

महामंत्री
डॉ. आशीष जैन आचार्य शाहगढ़, सागर

कार्यकारिणी एवं समस्त सदस्यगण।

प्रकाशक
प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन
सागर (म.प्र.)

978-81-986457-7-7